गायत्री मंत्र के यो अक्षर की व्याख्या

प्राणघातक व्यसन

• श्रीराम शर्मा आचार्य

बुद्धि की देवी गायत्री के प्रत्येक उपासक के लिए स्वाध्याय भी उतना ही आवश्यक धर्म कृत्य है, जितना जप, ध्यान, पाठ आदि। बिना स्वाध्याय के, बिना ज्ञान की उपासना के बुद्धि पवित्र नहीं हो सकती, मानसिक मलीनता दूर नहीं हो सकती और इस सफाई के बिना माता का सच्चा प्रकाश कोई उपासक अपने अंतःकरण में अनुभव नहीं कर सकता। जिसे स्वाध्याय से प्रेम नहीं, उसे गायत्री उपासना से प्रेम है, यह नहीं माना जा सकता। बुद्धि की देवी गायत्री का सच्चा भोजन स्वाध्याय ही है। ज्ञान के बिना मुक्ति संभव नहीं। इसलिए गायत्री उपासना के साथ ज्ञान की उपासना भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

□ प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

□ लेखक : पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

□ पुनरावृत्ति : २०११ मूल्य : ४.०० रुपये

□ मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

प्राणघातक व्यसन

गायत्री महामंत्र का उन्नीसवाँ अक्षर 'यो' हमको हानिकारक दुर्व्यसनों से बचने की शिक्षा देता है—

योजनं व्यसनेभ्यः स्यात्तानिपुंसस्तु शत्रवः।
मिलित्वैतानि सर्वाणि समयेध्नन्ति मानवम्॥

अर्थात—"व्यसनों से कोसों दूर रहें, क्योंकि वे प्राणघातक शत्रु हैं।"

व्यसन मनुष्य के वास्तविक प्राणघातक शत्रु हैं। इनमें मादक पदार्थ प्रधान हैं। तंबाकू, चाय, गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक से एक बढ़कर हानिकारक हैं। जैसे थके हुए घोड़े को चाबुक मारकर दौड़ाते हैं, परंतु अंत में उससे घोड़े की बची-खुची शक्ति भी नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार नशा पीने से आरंभ में तो कुछ फुरती सी दिखलाई पड़ती है, परंतु परिणामस्वरूप उससे रही सही शक्ति भी जाती रहती है। मादक द्रव्यसेवन करने वाला व्यक्ति दिन-दिन क्षीण होते-होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है। व्यसन मित्र के रूप में हमारे शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं।

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं, पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। सिनेमा, नांच-रंग, व्यभिचार, जुआ आदि कितनी ही हानिकारक एवं अप्रतिष्ठाजनक आदतों में लोग फँस जाते हैं और अपना धम, समय तथा स्वास्थ्य बरबाद कर डालते हैं।

ये दुर्व्यसन कुछ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन को ही नष्ट नहीं करते वरन बड़े-बड़े देश, राष्ट्र, जनसमुदाय इनके कारण सर्वनाश के गड्ढे में गिर जाते हैं। जैसा भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं कि मुगल साम्राज्य का मुलोच्छेद शराबखोरी के कारण ही हुआ। इसी प्रकार चीन का राष्ट्र अफीमखोरी के कारण नष्ट हो गया। पुराने जमाने में भी मिश्र, यूनान और रोम के उन्नतिशील एवं शक्तिशाली राष्ट्र मद्य के फंदे में फँसकर पतन के गर्त में गिर चुके हैं। हमारे प्राचीन इतिहास में यादवों का शक्तिशाली राज्य मद्यपान के व्यसन के कारण ही नष्ट हो

गया और श्रीकृष्ण जैसे लोकोत्तर पुरुष भी उसकी रक्षा न कर सके। यही कारण है कि हिंदू धर्मशास्त्रों में सुरापान की गिनती महापातकों में की गई है।

ब्रह्महत्यां, सुरापश्च स्तेयो गुरुतल्पगः।
एते सर्वे पृथाङ्ज्ञेया महापातकिन्ते नराः॥

अर्थात— "ब्रह्मघाती, मद्यप, चोर, गुरुपत्नी में गमन करने वाला—ये सभी महापातकी और निंदित हैं, इनका परित्याग कर देना चाहिए।"

मदिरा प्रकृति के प्रतिकूल है

मदिरा सेवन करने वालों की दलील है कि भोजन के साथ थोड़ी सी शराब ले लेने से पाचन क्रिया भलीभाँति हो जाती है। स्थूल दृष्टि से अवश्य ऐसा प्रतीत होता है कि भोजन खूब पच रहा है। खुलकर झूठी भूख लगने लगती है। इसका कारण यह होता है कि मदिरा में तेजाब होता है जो कि भोजन को गला देता है, किंतु उसकी प्रतिक्रिया आँतों पर भी होती है। भीतर ही भीतर आँतें भी गलती रहती हैं और शरीर की पाचन प्रणाली की दशा इतनी बिगड़ जाती है कि शराबी आदमी अनेक उदर संबंधी रोगों से ग्रसित होकर काल-कवलित हो जाता है।

मदिरा पीना प्रकृति के प्रतिकूल है। जब मदिरा का प्याला हाथ में लेकर मुख के समीप लाते हैं तो उसकी बू दिमाग में पहुँचते ही त्वचा में सिकुड़न आ जाती है, आँखें भी बंद हो जाती है, परंतु मनुष्य उसे प्रकृति के प्रतिकूल जबरदस्ती पी जाता है। मदिरा के स्थान पर दूध का प्याला पीने के लिए जब मुख के निकट लाते हैं, तब कोई अंग उसे अस्वीकार नहीं करता, बल्कि उसे बड़े चाव से मनुष्य पी जाता है। मदिरा का सेवन करने पर शरीर का प्रत्येक अंग उस समय चेतना शून्य सा होने लगता है। बुद्धि, निर्णयशक्ति, आत्मसंयम, इच्छाशक्ति, सदासद्विवेक, न्यायान्याय की भावना, कर्त्तव्य, प्रेम, करुणा, स्वार्थ त्याग नष्ट हो जाते हैं। अश्लील बातें मुँह से निकलने लगती हैं व सारे शरीर को एकबार हिला देती हैं। यदि अत्यधिक पी गया तो तबीयत मितलाने लगती है और वह शरीर से कै के रूप में बाहर निकल जाती है। मनुष्य मद्यप की दशा में बेइज्जत होता है।

मद्य हमें कमजोर, निस्तेज, शक्तिहीन बनाता है। कमजोर रहना, अपराध है। अतः शराब हमें अपराधी बनाती है। इसलिए वह सर्वथा त्याज्य है।

गांधी जी की विचारधारा एवं रचनात्मक कार्यक्रम में शराबबंदी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। विदेशी सरकार ने मादक पदार्थों—शराब, अफीम, तंबाकू, चाय, काफी, गाँजा, भाँग, कोकेन इत्यादि का प्रचार बढ़ाया तथा हमें उनका अभ्यस्त बनाकर क्षीणकाय, अल्पायु एवं दुर्बल मन बना दिया है। शराबी की स्मरण शक्ति बिगड़ जाती है, बुद्धि, विवेक और नीति का नियंत्रण उठते ही, वह मनोवेगों के साम्राज्य में विहार करने लगता है, दुर्विकार उस पर आधिपत्य जमा लेते हैं। वह खाना, वासना और मद्य का ही गुलाम बन जाता है। मद्य अनियमितता, मूर्खता, अयोग्यता, आकस्मिक दुर्घटनाओं का एक महान कारण है। शराबी न सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान रखता है, न रोगों का या परमात्मा का, उसकी प्रवृत्ति निरंतर व्यभिचार की ओर होती जाती है। महात्मा जी का विचार था कि मादक वस्तुओं का व्यवहार मनुष्य तथा राष्ट्र को पतन की ओर ले जाता है। नागरिकों के चरित्र का पतन, राष्ट्र का पतन है।

कुछ व्यक्तियों की यह गलत धारणा हो गई है कि शराब से शक्ति प्राप्त होती है। शराब उत्तेजक मात्र है। पीने के कुछ काल तक इससे हमारी पूर्वसंचित शक्ति एकत्रित होकर उद्दीप्त मात्र होती है। नई शक्ति नहीं आती। यह शक्ति उत्पन्न करने के स्थान पर, नशे के बाद मनुष्य को निर्बल, निस्तेज और निकम्मा बना जाती है। आदत पड़ने पर इसकी उत्तेजना के बिना कार्य में तबीयत नहीं लगती। गरीब भारत का इतना रुपया इसमें व्यय हो जाता है कि पौष्टिक भोजन, दूध, फल इत्यादि के लिए कुछ शेष नही बचता।

जो व्यक्ति उत्तेजक पदार्थों से शक्तिप्राप्ति की आशा रखता है, वह कृत्रिम माया की मरीचिका में निवास करता है। स्वाभाविक, प्राकृतिक शक्ति ही मनुष्य की वास्तविक पूँजी हो सकती है। वस्तुतः शराब से शक्तिप्राप्ति की धारणा भ्रांतिमूलक है।

पाश्चात्य देशों में अत्यधिक ठंढ के कारण शराब का प्रचलन हुआ है, किंतु वे लोग यह समझने लगे हैं कि मदिरा से मानसिक शक्ति को सहायता प्राप्त होती है, कल्पना स्वच्छंदतापूर्वक कार्य करने लगती है, भावनाएँ और नव योजनाएँ स्फुरित होने लगती हैं, विचार कोमल, सूक्ष्म और महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। ये बातें भ्रांतिमूलक है। मदिरा की उत्तेजना में सही विचार कैसे संभव है?

मदिरा से तर्क, विवेक बुद्धि, संयत भाव से निज कार्य शुद्ध रूप में कैसे कर सकते हैं? मदिरा तमोगुणी है, कार्यशक्ति का क्षय करती है, प्रतिष्ठा, कीर्ति का नाश कर पतन और व्यभिचार की ओर प्रवृत्त करती है। फिर यह कैसे संभव है कि यह उच्च भावनाएँ या सूक्ष्म कल्पनाएँ, सही विचार प्रदान कर सके? मदिरा पीने वाले व्यक्ति की सौंदर्य की अनुभूति कभी ठीक नहीं हो सकती। उसके भावों का उन्मेष भी ठीक नहीं हो सकता। उत्तेजना की अवस्था में शुद्ध कलाकृति का निर्णय नहीं हो सकता।

अतः मन से यह भ्रमात्मक धारणा निकाल देनी चाहिए कि मद्य विचार शक्ति के विकास में सहायक है। इसके विपरीत शराब से उलटे मनुष्य की रचनात्मक शक्तियों—जैसे कल्पना, भावना, विचार दृढ़ता, निश्चय, काव्य प्रतिभा, मानसिक संतुलन, विवेक, तर्क शांति का ह्रास होता है। मनुष्य की उच्च सात्विक दैवी संपदाओं के स्थान पर यह मन पर आसुरी तमोगुण प्रधान शैतानी दुष्प्रवृत्तियों का अधिकार करा देती है। उसमें आत्मनिरीक्षण, संयम, आत्मनियंत्रण, गंभीर कार्य करने की शक्तियाँ नहीं रहतीं। शराब के नशे की अवस्था में किया गया कार्य मनःशांति की अवस्था में किए गए कार्य से निम्नकोटि का होता है।

तंबाकू का हानिकारक प्रभाव

तंबाकू का प्रचार इन दिनों बेहद बढ़ गया है। पुराने जमाने में इसे कभी-कभी औषधि के रूप में काम में लाया जाता था, पर इधर कुछ सौ वर्षों से इसने एक बहुत बड़े दुर्व्यसन का रूप धारण कर लिया है। बच्चे से लेकर वृद्ध तक बीड़ी, सिगरेट मुँह से लगाए देखे जाते हैं और स्त्रियाँ तक इससे नहीं बची हैं। इसके जहरीले धुएँ से मनुष्य निर्बल, आलसी, विलासी और उत्तेजक स्वभाव का बनता है। तंबाकू का अधिक सेवन करने वालों को क्षय रोग, हृदय रोग, उदर रोग, नेत्रों की खराबी, नपुंसकता, पागलपन आदि तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। विलायत के बड़े-बड़े डाक्टरों ने खोज करके बतलाया है कि महाभयानक 'कैंसर' रोग का एक बड़ा कारण धूम्रपान ही होता है।

तंबाकू में एक महा भयंकर विष पाया जाता है जिसे 'निकोटिन' कहते हैं। तीन सेर तंबाकू की सूखी पत्तियों में से एक छटाँक 'निकोटिन' निकाला जा सकता है। निकोटिन संखिये से भी तीव्र विष है, जो मनुष्य पर धीरे-धीरे प्रभाव डालकर

प्राणांत करता है। निकोटिन की एक बूँद खरगोश की त्वचा पर डालने से उसकी मृत्यु हो जाती है। चीन में आत्महत्या करने का यह एक सुगम साधन बन गया था। वहाँ लोग जीवन से तंग आकर हुक्के का सड़ा पानी पीकर जीवन लीला समाप्त कर लेते थे। आरंभ में तंबाकू पीने से कै, दस्त, चक्कर आने शुरू हो जाते हैं।

डॉ. केलाग ने बतलाया है कि आधा सेर तंबाकू में ३८० ग्रेन निकोटिन विष होता है। यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दसवाँ हिस्सा कुत्ते को तीन मिनट में मार सकता है। एक व्यक्ति इस विष से तीस सेकंड में मर गया था। आधा सेर तंबाकू का निकोटिन तीन सौ आदमियों के प्राण ले सकता है। एक साधारण सिगरेट में जितनी तंबाकू होती है, उसके विष से दो आदमियों के प्राण लिए जा सकते हैं। भयंकर से भयंकर विषधर सर्प तंबाकू के विष से इस तरह मर गए मानो उन पर बिजली गिर पड़ी हो।

तंबाकू का सबसे घातक प्रभाव हमारे रक्त पर पड़ता है। विषैले परमाणु फेंफड़े और हृदय तक पहुँचकर मनुष्य के रक्त को विकारमय, रोगी और निर्बल बना देते हैं, जब यह विषैले रक्त नलिकाओं में प्रवाहित रहता है तो रोग धीरे-धीरे उस पर अपना अधिकार जमा लेते हैं।

सर्वप्रथम रोग क्षय या तपेदिक है। तपेदिक का कारण दूषित वायु है। सिगरेट, हुक्का या बीड़ी का दूषित धुआँ जब पुनः-पुनः श्वासोच्छवास द्वारा अंदर पहुँचता है तो इसका विषैला प्रभाव हमारी जीवनीशक्ति पर पड़ता है। अधिक धूम्रपान करने वालों के फेंफड़े सड़ जाते हैं।

तंबाकू मस्तिष्क को निष्क्रिय करता है। हृदय रोग तंबाकू की विशेष देन है। इसका विष हमारे फेंफड़ों और हृदय पर आक्रमण किया करता है। तंबाकू के विष के प्रभाव से हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न पड़ जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है।

बीड़ी, सिगरेट, हुक्का पीने से हानियाँ

पीने के तंबाकू का कुत्सित प्रभाव नेत्रों के रोगों में विशेष रूप से प्रकट होता है। तंबाकू के विष से न केवल फेफड़े, हृदय या मस्तिष्क, प्रत्युत नेत्रों को भी हानि पहुँचती है। यदि आप नेत्र चिकित्सकों से सम्मति लें तो वे एक स्वर से

यह निर्देश करेंगे कि तंबाकू से मनुष्य की दृष्टि निर्बल पड़ जाती है। श्री बैजनाथ महोदय के अनुसार, "तंबाकू के भक्तों में अंधापन आ जाता है। वे विभिन्न रंगों को पहिचान नहीं पाते। जर्मनी और बेल्जियम में तंबाकूजनित नेत्र रोगों की अधिकता है।"

तंबाकू कामोद्दीपक पदार्थ है। इसकी उत्तेजना में मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियाँ उत्तेजित हो उठती हैं और मनुष्य व्यभिचार अशिष्टता, अनीति की ओर प्रवृत्त होता है। तंबाकू पीने से चरित्रहीनता आती है।

चरित्रभ्रष्टता के साथ नपुंसकता आती है। डॉ. फूट लिखते हैं कि "मैने देखा है कि तंबाकू नपुंसकता के कारणों में एक मुख्य कारण है और जब मेरे पास ऐसे लोग चिकित्सा के लिए आते हैं तो मैं उनसे कहता हूँ कि तुम्हें दो में से एक बात पसंद करनी होगी-विषय सुख या तंबाकू।" तंबाकू से प्रेम हो तो सांसारिक सुख से निराश हो जाओ। वास्तव में तंबाकू से शरीर की संपूर्ण नसें ढीली पड़ जाती हैं, पर कभी-कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है। सबसे पहले इसका विषैला प्रभाव शरीर के सबसे अधिक कमजोर अंग पर ही होता है और चूँकि पुरुष अपनी जननेंद्रिय का बहुत दुरुपयोग करता है। तंबाकू का विष इस दुर्बल और दलित अंग को सबसे पहले धर दबाता है।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी तंबाकू का सेवन अत्यंत निंदनीय बतलाया गया है। विष्णु पुराण में तंबाकू पीने से गरीबी, दुःख, तामसवृत्ति की उत्पत्ति होने का निर्देश है। एक स्थान पर कहा गया है—

"तमाल भक्षितयेन सगच्छेन्नरकार्णवे"

पद्म पुराण में कहा गया है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

अर्थात-जो मनुष्य धूम्रपान करने वाले ब्राह्मण को दान देते हैं तो वे नरक में जाते हैं और ब्राह्मण शूकर की योनि पाता है।

तंबाकू से दाँत खराब होकर उनका रंग पीला और मटमैला हो जाता है। एक डाक्टर ने लिखा है कि तंबाकू पीने वालों के पेट के भीतर की कोमल त्वचा पर गोल-गोल दाग पड़ जाते हैं। रक्त पतला होकर कमजोर हो जाता है। फेंफड़े

निर्बल हो जाते हैं और हृदय की स्वाभाविक धड़कन में विकार उत्पन्न होकर एक प्रकार का कंपन शुरू हो जाता है।

इस प्रकार तंबाकू मनुष्य के स्वाभाविक स्वास्थ्य को नष्ट करके शरीर में तरह-तरह के विकार उत्पन्न कर देती है। यह मनुष्य के शरीर के लिए एक विजातीय द्रव्य है, इसलिए शरीर इसे किसी दशा में अपने भीतर नहीं रख सकता और इसी से तंबाकू खाने वालों को जगह-जगह थूकते रहने की घृणित आदत पड़ जाती है। तंबाकू के व्यवहार से मनुष्य की श्वांस नली, फेंफड़ों में जख्म होकर सड़न उत्पन्न हो जाती है, जिससे खाँसी की उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि जो लोग सदैव तंबाकू पीते हैं, बड़ी उम्र में उनको स्थायी रूप से खाँसी की शिकायत पैदा हो जाती है जो अंत में मृत्यु के साथ ही जाती है।

पान से चरित्रहीनता की वृद्धि होती है

नित्यप्रति बाजारों, गलियों और रेलवे स्टेशनों पर बढ़ती हुई पान की आदत देखी जा सकती है। आधुनिक युग में पान का व्यसन उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। इसका प्रयोग प्रायः हानिकर है, यह लोग जानते ही नहीं। आधुनिक सभ्यता ने इसे कुछ ऐसा अपना लिया है कि इसमें अशिष्टता, हानि या अश्लीलता नहीं समझी जाती।

पान वासना उद्दीप्त करने वाला उत्तेजक मिश्रण है। मध्य युग में वैश्याएँ विशेष रूप से पान का उपयोग करती रही थीं। आज भी अधिकतर निम्नकोटि के मिरासी, भिश्ती, मजदूर, छैलछबीले कामुक व्यक्ति इसका प्रयोग करते हैं। वेश्या, मदिरा और पान— इन तीनों का संग है। मुगल युग में वेश्याओं और कामुकता को विशेष प्रोत्साहन मिलने से पान की लोकप्रियता बढ़ी। मुगल बादशाह और नवाब पान के आदी ही नहीं बन गए थे, वरन यह व्यसन इतनी बढ़ती पर था कि उसके बिना उनका जीवन दूभर हो गया था। पानदान और वेश्याएँ उनके साथ युद्ध में भी रहती थीं।

आजकल पान का प्रचार इतना बढ़ गया है कि साधारण व्यक्ति भी दो-चार पान खा ही लेता है। अभ्यस्त व्यक्ति पचास से सौ तक पान चबा जाते हैं। सुपारी को महीन काटकर खुशबूदार चीजें मिलाकर ऐसा आकर्षक बनाया जाता है कि उसे खाना फैशन सा हो गया है। जर्दा, अधिक चूना तथा अनेक क्रत्रिम पदार्थ डालकर उसे ऐसा बना दिया जाता है कि उससे हानि होने की अधिक संभावना है।

पान का रासायनिक विश्लेषण करने पर इसमें पियोरीन, पियोरिडीन, ऐरेकोलीन, एमीलीन, मरक्यूरिक एलमीन, पियोरोवेटीन इत्यादि विष-तत्त्व विद्यमान रहते हैं। स्थान वैभिन्य के साथ-साथ पान के रासायनिक तत्त्व भी परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे मद्रासी पान में पियरोवेटीन नामक विष की मात्रा अधिक है। बंगला पान सबसे अधिक विषयुक्त समझा जाता है।

एक विशेषज्ञ का कथन है कि यदि सादे २८५ पानों का विष निकालकर कुत्तों को खिला दिया जाए तो वे पाँच मिनट के अंदर समाप्त हो जाएँगे, परंतु चूने और कत्थे से लगे ५८ पान ही विष की उक्त मात्रा देने में समर्थ हो जाएँगे। इसलिए कत्थे-चूने लगे पान सादे पान से अधिक विषैले प्रमाणित हुए।

पियरोवेटीन नामक विष हृदय गति को शिथिल तथा निष्क्रिय बनाने वाला होता है। अन्य विषों के कीटाणु मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं और उसकी सूक्ष्मता नष्ट कर देते हैं। इन विषों के प्रभाव से मस्तिष्क अशांत रहने लगता है। नींद का लोप हो जाता है। पान से कामेंद्रियाँ उत्तेजित रहती हैं तथा मन विषय वासनामय गंदे विचारों से परिपूर्ण रहता है। कामवासना को बढ़ाने के कारण यह आध्यात्मिक सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए विषतुल्य है। कहा जाता है कि एरकोलिन विष चूने तथा कत्थे से संयुक्त होकर, अत्यंत कामोद्दीपक हो जाता है। यह पुरुष-स्त्री के शुक्र तथा रज कीटों का नाश कर देता है।

अधिक पान खाने से भूख कम हो जाती है। पान खाने वालों की पानी से तृप्ति हो जाती है। पान का घातक प्रभाव दाँतों पर होता है। सुपारी, चूना, कत्था, जर्दा इत्यादि के सूक्ष्म कण यत्र-तत्र मसूड़ों या कटे हुए दाँतों के छिद्रों में एकत्रित हो जाते हैं। ये मसूड़ों को काला तथा दाँतों की जड़ों को खोखला बना देते हैं। दाँतों में कीड़े लग जाते हैं और प्रायः पायरिया नामक घातक रोग उत्पन्न हो जाता है। दाँतों के इतने अस्पताल, देखने से ज्ञात होता है कि तीस-चालीस वर्ष की अवस्था में ही आधुनिक बाबुओं के दाँत गिर जाते या खोखले होकर अनेक बीमारियों की सृष्टि करते हैं।

सौ में से नब्बे या इससे भी अधिक लोगों के दाँत गिरने का कारण उनका पान का बहुत अधिक व्यवहार ही है। पान के रेशे सुपाड़ी के बारीक टुकड़े और चूना जाकर दाँतों के बीच में फँस जाते हैं। समय पाकर ये इतने अधिक हो जाते हैं

कि दाँतों पर जोर डालकर उनके बीच संधि को बढ़ा देते हैं। इनको हटाने के लिए जीभ सदा दांतों के बीच में लगी रहती है। कुछ समय पश्चात मसूड़ों में सूजन हो जाती है और उनके भीतर पीव उत्पन्न हो जाती है। दाँतों में असह्य पीड़ा रहती है और कुछ समय पश्चात जब उनकी जड़ की नसें आदि भलीभाँति नष्ट हो जाती हैं तो वे गिर पड़ते हैं। पान का व्यसन दाँतों का अंत कर देता है। लोग बिना दाँत के भोजन को भलीभाँति न कुचल सकने के कारण उसे वैसे ही निगल जाते हैं। अंत में दाँतों का कार्य उदर को करना पड़ता है और वह भी कुछ समय पश्चात निर्बल हो जाता है। भोजन भलीभाँति नहीं पचता और मनुष्य निर्बल होते-होते अंत में पान के व्यसन के कारण काल के गाल में पहुँचता है।

पान खाना अशिष्टता, ओछापन तथा कामोत्तेजक स्वभाव का द्योतक हैं। पान की दुकान पर खड़े होकर पान खाना असभ्य, वासनाप्रिय, दिखावटी, अस्थिरता, लोलुपता को स्पष्ट करता है। मनुष्य का पतन प्रायः पान से ही प्रारंभ होता है। वह इसे साधारण सा व्यसन मानकर हँसी-हँसी में आरंभ करता है किंतु धीरे-धीरे यह आदत का एक अंग बनता है। तंबाकू खाने को तबीयत करती है, फिर सिगरेट प्रारंभ होती है, अंत में मदिरा और व्यभिचार तक हद पहुँच जाती है। अतः चतुर व्यक्ति को इस व्यसन से दूर ही रहना उत्तम है। सुपारी का भी शौक बुरा है। इससे खुश्की रहती है, दाँतों पर अनावश्यक बोझ पड़ता है, कुछ चबाए बिना मन नहीं मानता, मन एकाग्र नहीं हो पाता और चंचलता बढ़ती रहती है।

सभ्यता का विष चाय

चाय एवं काफी सभ्य संसार में पनपने वाले मादक पदार्थ हैं। सभ्य जगत ने और नशीली चीजों की तरह इन्हें भी अपना लिया है। वास्तव में ये दोनों जीवनीशक्ति का ह्रास करते हैं। इनके प्रयोग से शरीर से निकलने वाले कार्बोलिक ऐसिड का परिणाम बढ़ जाता है।

प्रथम हानि पाचन शक्ति का ह्रास है। बदहजमी, भूख की कमी, अपच में चाय बड़ी सहायक होती है। सर विलियम राबर्ट लिखते हैं—"थोड़ी मात्रा में भी चाय और काफी का सेवन करने से हमारे शरीर के पाचन रस कमजोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पौष्टिक तत्त्वों के सत्वों को हमारा शरीर नहीं खींच सकता, दूसरे शब्दों में यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है।"

दाँतों के रोग में वृद्धि का एक कारण गर्म-गर्म चाय का व्यवहार ही है। गर्म पानी लगने से दाँतों की जड़ें निर्बल पड़ जाती हैं। देखनें में दाँत काले मैले गंदगी से भरे हुए दिखाई देने लगते हैं।

चाय क्षणिक उत्तेजना देती है। उत्तेजना समाप्त होने के पश्चात मनुष्यों को स्वाभाविक शक्ति कम मालूम होने लगती है। यह शक्ति बढ़ाती नहीं, पुरानी शक्ति को क्षण भर के लिए उत्तेजित मात्र कर देती है। मस्तिष्क में रक्त का संचालन अधिक हो जाने से उसमें नई स्फूर्ति सी आ जाती है। चाय या काफी पीने वालों को कोई न कोई उत्तेजना अवश्य चाहिए। बिना उस उत्तेजना के वे कोई भी कार्य संपन्न नहीं कर पाते। प्रायः देखा जाता है कि लोग चाय का प्याला पीते रहते हैं, तभी तक उनका मन कार्य में लगता है। जहाँ चाय समाप्त हुई कि कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं रहती। चाय सिगरेट जैसी आदत बन जाती है।

चाय से सर में दरद बना रहता है। लोगों में यह भ्रांतिमूलक धारणा बैठ गई है कि चाय से भोजन हजम हो जाता है। वास्तव में इससे उलटे पाचन क्रिया में व्यवधान उपस्थित हो जाता है। दिल की धड़कन की शिकायत बढ़ जाती है और अंग भारी रहते हैं।

अनेक गण्यमान्य चिकित्सकों का कथन है कि चाय और काफी हृदय के कार्य को बढ़ा देती है। फेंफड़ों को बहुत अधिक कार्बोलिक एसिड गैस बाहर निकालना पड़ता है, शरीर में उष्णता की न्यूनता हो जाती है तथा गुरदों के कार्य में अभिवृद्धि हो जाती है। यदि चाय तथा काफी में कहवाइन (कडुवा विष) का अंश बहुत अधिक रहता है तो मनुष्य का जी मिचलाता है, बहुत चक्कर आते हैं और अंत में मनुष्य बेहोश हो जाता है। अधिक तेज काली-काली कहवाइन विष से भरी हुई चाय से मनुष्य मर भी सकता है।

चाय में दो प्रकार के विषैले पदार्थों का अस्तित्व है—(१) टेनिन (२) कहवाइन । चाय पीते समय हम जो कसैला-कसैला स्वाद अनुभव करते हैं, वह टेनिन है तथा शरीर के लिए हानिकर है। यह चमड़े का तनाव बढ़ा देता है। जब यह मानव शरीर के भीतर प्रविष्ट होता है तो आमाशय की झिल्ली को अनुचित तनाव की स्थिति में ला देता है। इससे आमाशय में भोजन का परिपाक सहज में नहीं होता, न इसका पोषण झिल्ली कर सकती है। कहवाइन एक प्रकार का उत्तेजक है,

जो मस्तिष्क को उत्तेजित करता है। चाय का पेपीन नामक विष भी टेनिन जैसा ही दूषित है।

शारीरिक हानि के विचार से शराब और चाय एक ही प्रकार के हैं, अंतर महँगी और सस्ती का है। शराब मदहोश बनाकर अल्पकाल के लिए दुःख हरती है, किंतु चाय उत्तेजना देती और नींद हरती है। अमूल्य जीवन तथा शरीर के स्वास्थ्य को नष्ट करने में यह शराब से कम नहीं है क्योंकि यह उससे सस्ती है और इसका प्रचार स्थान-स्थान पर है। क्षुधा नष्ट हो जाती है तथा चाय के अतिरिक्त और किसी प्रकार की इच्छा नहीं रह जाती। हृदय की गति निर्बल पड़ जाती है। इसके बिना मन खिन्न, चिड़चिड़ा और मस्तिष्क कार्यरहित सा रहता है।

भारत के प्रसिद्ध डॉ. गोपाल भास्कर गडबुल लिखते हैं कि कान तथा अन्य ज्ञान इंद्रियों पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। कुछ दिनों में पक्षाघात (लकवा) बहरापन आदि रोग होते हैं। जो व्यक्ति चाय पीते हैं, उनके दिमाग की नसें ढ़ीली पड़ जाती हैं और कानों में साँय-साँय की ध्वनि आने लगती है। स्त्रियाँ जो मनुष्यों की अपेक्षा अधिक निर्बल होती हैं, चाय की अभ्यासी बनकर रोगों से अधिक ग्रस्त हो जाती हैं।

कुछ डाक्टरों का कथन है कि चाय-काफी के सेवन से एक नया रोग उत्पन्न हुआ है— पहले मस्तिष्क में एक प्रकार का वेग उत्पन्न होता है, चेहरे का रंग पीत वर्ण हो जाता है किंतु चाय पीने वाला उसकी परवाह नहीं करता। कुछ समय पश्चात आंतरिक एवं बाह्य कष्ट प्रकट होने लगता है। चित्त (स्वभाव) शुष्क और मुखाकृति अधिक पीतवर्ण हो जाती है। चाय के कारण एक अन्य रोग जिसे 'चाहरम' कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है, जिसमें एक प्रकार की कठिन मूर्च्छा आंतरिक इंद्रियों के कार्य शिथिल, हृदय में कंप और पाचन यंत्रों में पीड़ा होती है, जिसके फलस्वरूप स्वाभाविक शिथिलता प्रकट होने लगती है। मूत्राशय पर अप्राकृतिक दबाव पड़कर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है।

एक विशेषज्ञ लिखते हैं,''चाय का कैफीन कब्ज उत्पन्न करता है। प्रायः देखा जाता है कि चाय के शौकीनों को तब तक टट्टी नहीं उतरती जब तक वे चाय न पी लें। वास्तव में चाय टट्टी नहीं करती। गरम पानी जो चाय में मिला रहता है, शरीर के अपान वायु को हलका कर देता है और उसी के कारण मल

का निस्सरण होता है। चाय पीने वाले उसे चाय का गुण समझते हैं। कैफीन विष दिल की धड़कन को बढ़ा देता है और कभी-कभी तो दिल की धड़कन इतनी बढ़ जाती है कि आदमी मर तक जाता है। इस विष से गठिया आदि वात रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। गुरदे पर इसका ऐसा बुरा प्रभाव पड़ता है कि बहुमूत्र की शिकायत शुरू हो जाती है। चक्कर आना, आवाज बदल जाना, रक्त विकार, लकवा लग जाना, वीर्य के अनेक विकार, मूर्च्छा आना, नींद का कम हो जाना आदि ऐसे दुष्ट रोग हैं जो चाय में रहने वाले साइनोजेन, स्ट्रिनाइन, साइनाइड आदि विषों के कारण उत्पन्न होते है।''

चाय के प्रचार में हमारी दिखावटी अंधानुकरण करने की दूषित मनोवृत्ति ने विशेष योग प्रदान किया है। ठंढे मुल्कों के लिए चाय आवश्यक हो सकती है, किंतु भारत जैसे गरम देश के लिए यह हानिकर है।

भाँग, गाँजा और चरस की नाशकारी कुटेव

भाँग और गाँजा भारत के ग्रामों में फैले हुए महारोग हैं, जो निरंतर भयंकर विनाश कर रहे हैं। दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे अपढ़, पिछड़े, साधु, वैरागी, भिखारी, पंडे, पुरोहित लोग भाँग के विशेष शौकीन होते हैं। भगवान शंकर की आड़ लेकर ये लोग निरंतर भाँग, गाँजा और चरस का प्रयोग करते हैं। हमारा कलंक है कि हम ऐसे साधुओं को घृणा नहीं करते।

श्री बैजनाथ महोदय लिखते हैं, ''भाँग, गाँजा, चरस के प्रचारक तो ५६ लाख उत्साही साधु तथा ग्रामों में स्थिति मंदिर हैं। मंदिरों और साधुओं द्वारा भक्ति का प्रचार कितना होता है, सो तो भगवान ही जानें किंतु वे प्राय: भंगड़ियों के अड्डे तो जरूर होते हैं। शाम-सुबह ग्राम के व्यक्ति बाबाजी की धूनी पर और शहरों के सेठिया तथा गुंडे इत्यादि अपने बाग-बगीचों या शहर के बाहर वाले मंदिरों में भाँग छानने अथवा सुलफा पीने (गाँजे का दम लगाने) के लिए नियम एवं एक निष्ठापूर्वक एकत्र होते हैं। ये लाखों स्थान दुर्गुणों को बढ़ाने का कार्य कर रहे हैं। तीर्थस्थानों में तो यह बुराई और भी अधिक परिमाण में पाई जाती है। प्रत्येक घाट तथा मंदिर निश्चित रूप से भाँग का अड्डा होता है।''

स्मरण रखिए, भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि भयंकर विषैले पदार्थ हैं। इनमें प्रवृत्त होने से मानव की वृत्तियाँ पापमय हो जाती हैं, मन उत्तेजना एवं विकारों से

परिपूर्ण हो जाता है। सुश्रुत ने इन्हें कफ और खाँसीवर्द्धक बताया है। भाँग का पौधा विषैला है, जिससे भाँग, गाँजा, चरस तीनों नशीली चीजें तैयार होती हैं। सुश्रुत ने भाँग या गाँजे के पौधे का स्थावर विषों में उल्लेख किया है और इसकी जड़ को विष माना है। (देखिए सुश्रुति कल्प अध्याय-२)

कुछ चिकित्सकों के अनुसार इन मादक वस्तुओं के प्रयोग से शक्ति क्षीण होती है, नेत्र का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सर में चक्कर आने लगते हैं। भाँग पीकर मदहोश हो जाते हैं और भोजन अधिक खाते हैं, किंतु यह तो एक प्रकार की अस्वाभाविक क्षुधा होती है। नशा उतरने पर अपच, पेट का भारीपन, उलटी और पेट के अन्य विकार उत्पन्न होते हैं। गाँजा पीने वालों के दिमाग बहुत जल्दी बिगड़ जाते हैं। भाँग पीने वालों के चित्त की स्थिरता जाती रहती है और उचित-अनुचित का विवेक नहीं रहता। भँगड़ी व्यक्ति सनकी होता है। उसके मन में जैसे ही एक बात उठती है, वह वैसे ही उसे कर बैठता है। ये व्यर्थ के व्यय मनुष्य को पनपने नहीं देते। गरीब मूर्खों की अधिकतर आय इन्हीं अनावश्यक मादक वस्तुओं में नष्ट हुआ करती है। भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि से मनुष्य की वासना उदीप्त होती है और वह व्यभिचार में प्रवृत्त होता है। ऐसा व्यक्ति व्यापार, उद्यम, कला-कौशल या किसी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को करने के योग्य नहीं रह जाता।

अफीम का घातक दुर्व्यसन

शराब, तंबाकू, पान आदि की भाँति अफीम भी प्रचलित है। इसका नशा घातक है और तनिक सी अधिक मात्रा में लेने से मृत्यु का भय है। श्रीयुत पैटन ने 'भारत में अफीम' नामक पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"भारत में बच्चों तक को अफीम दी जाती है। थकावट तथा जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है। किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं और अनेक केवल व्यसन के लिए खाया करते हैं। ये सभी सेवन के तरीके कृत्रिम और अनुचित हैं। बच्चों को देने से वे नशे में पड़े तो रहते हैं किंतु उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, भूख मारी जाती है, स्वाभाविक चैतन्य शक्ति, उल्लास, उत्साह, प्रसन्नता मारी जाती है। शरीर कृष, दिमाग निर्बल एवं रक्त हीनता हो जाती है। उनकी जीवन शक्ति क्षीण हो जाने से वे जल्दी ही बीमारियों के शिकार

बनते जाते हैं। दवाइयों तक का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे बच्चे जब अध्ययन में पड़ते हैं तो उनमें एकाग्रता और कुशाग्रता का अभाव होता है।"

थकावट और जाड़े से मुक्ति के लिए इसका प्रयोग करना मूर्खता है, क्योंकि इससे कहीं स्वास्थ्यकर वस्तुएँ इसके लिए उपलब्ध हो सकती हैं। क्षण भर नशे में हम यह भूले रह सकते हैं कि हम थके हुए नहीं हैं, किंतु अफीम का नशा उतरने पर और भी निर्बलता एवं आलस्य धर दबाता है। न दरद, न थकान और न जाड़ा कोई भी हटते नहीं, वरन यह नशा लाकर रोगों या थकान के वास्तविक लक्षणों को ढँक देती है।

श्री पैटन के अनुसार अफीमची को (१) कब्ज (२) रक्त की न्यूनता (३) भूख कम लगना (४) हृदय, फेंफड़ों एवं गुरदों के रोग (५) स्नायुजन्य कमजोरी (६) फुरतीलेपन का अभाव (७) आलस्य, निंद्रा में कमी, चित्त भ्रम, दिवास्वप्न (८) नैतिक भावना की कमजोरी (९) कठोर कार्य से भागना (१०) अविश्वास और शारीरिक निर्बलता उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त जीवन-तत्त्वों को क्षीण करने और शरीर को निस्तेज बनाने में अफीम का प्रमुख हाथ है। पाकाशय निर्बल हो जाने के कारण अफीमची सूखता जाता है।

मानसिक क्षेत्र में अफीम के प्रयोग से ज्ञानात्मक शक्तियाँ निर्बल होती हैं। विशेषत: स्मरण शक्ति बिगड़ जाती है। स्नायु और ज्ञानतंतुओं में रोग लग जाते हैं। कुटेव पड़ जाने से यदि नियमित समय पर अफीम प्राप्त न हो तो किसी भी कार्य में तबीयत नहीं लगती, हाथ-पाँव बेजान से पड़े रहते हैं, क्योंकि अफीम उनकी स्वाभाविक शक्ति को पहले ही नष्ट कर डालती हैं। अफीम की आदत धीरे-धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है। जिन स्थानों में अफीम खाने या पीने की आदत है, वहाँ का संपूर्ण पुरुष वर्ग निकम्मा हो जाता है।

कोकेन का घातक व्यसन

कोकेन में अन्य घातक पदार्थों के साथ-साथ भयंकर विष होते हैं, जो डॉ. बेनेट के मतानुसार अँतड़ियों, श्वांस प्रणाली, ग्रंथि प्रणाली और रक्त प्रवाह प्रणाली पर घातक प्रभाव डालते हैं। इसका उपयोग प्राय: उच्च वर्ग के व्यक्ति करते हैं, जो सामाजिक बंधनों के कारण शराब या अफीम का खुला उपयोग नहीं कर पाते। भारत में वेश्याओं के यहाँ इसकी अधिक खपत है। व्यभिचारी व्यक्ति प्राय: इसका

प्रयोग क्षणिक उत्तेजना के लिए किया करते हैं। इसके नशे में वे सत-असत विवेक बुद्धि को भूल जाते हैं।

कोकेन के दुष्परिणाम बड़े भयंकर हैं, इससे पाकाशय के स्नायु तथा ज्ञानतंतु अकर्मण्य हो जाते हैं। फलत: दो-दो, तीन-तीन दिन क्षुधा प्रतीत नहीं होती। शरीर कृश हो जाता है। आरंभ में कोकेन के प्रयोग से ज्ञानतंतु और स्नायु के उद्‌गम स्थान पर कुछ झनझनाहट और वेग प्रतीत होता है, परंतु यह आवेग आध घंटे से अधिक शेष नहीं रहता। उतार प्रारंभ होने पर हृदय डूबता सा मालूम होता है। संपूर्ण शरीर पर आलस्य एवं नैराश्य की भावना छा जाती है। एक प्रकार का शैथिल्य एवं शारीरिक निर्बलता सर्वत्र छा जाती है।

कोकेन खाने की आदत अन्य मादक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक लुभावनी है, परंतु बड़ी भयानक भी है। इससे शारीरिक, मानसिक और आचारिक निर्बलता उत्पन्न हो जाती है। थोड़े समय तक इसका अभ्यास करने से इसके खाने और प्रभाव देखने की एक अनियंत्रित इच्छा प्रकट होने लगती है, सो किसी प्रकार तृप्त नहीं हो पाती और बिना जान लिए नहीं शांत होती। कोकेन वास्तव में ईश्वरीय कोप स्वरूप है जिसके फंदे में फँसने से अकथनीय दुर्गति होती है।

हमारी सभ्यता का कलंक—
नैतिक चरित्रहीनता

आज की दुनियाँ में शराब, गाँजा, सिगरेच, पान इत्यादि तो गजब ढा ही रहे हैं, किंतु उससे भी महा भयंकर समस्या मानसिक और नैतिक चरित्रहीनता की है। नशा पीकर बुद्धि विकारग्रस्त होती है तथा मनुष्य मानसिक व्यभिचार में प्रवृत्त होता है। वासनामूलक कल्पनाओं के वायुमंडल में फँसा रहने से प्रत्यक्ष व्यभिचार को ओर दुष्प्रवृत्ति होती है। व्यभिचार हमारी सभ्यता का कलंक है, जिस पर जितना लिखा जाय कम है। व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है, जिससे मनुष्य का शारीरिक, सामाजिक और नैतिक पतन होता है। परिवारों का धन, संपदा, स्वास्थ्य नष्ट हो जाते हैं, बड़े-बड़े राष्ट्र विस्मृति के गर्त में डूब जाते हैं। परिताप का विषय है, नाना रूपों में फैलकर व्यभिचार की महाव्याधि हमारे नागरिकों, समाज, गार्हस्थ एवं राष्ट्रीय जीवन का अध:पतन कर रही है। इसके परिणामों का उल्लेख करते हुए हृदय काँप जाता है।

आज की पत्र-पत्रिकाओं, समाचारपत्रों में छपने वाले विज्ञापनों को देखिए। आज के समाज का आइना आपके समक्ष आ जायगा। नामर्दी, नपुंसकता, वीर्यपात, स्वप्नदोष, गर्भपात करने, स्तंभन वृद्धि, वर्थ कंट्रोल के साधन नग्न तसवीरें, सौंदर्य वृद्धि, सिनेमा संबंधी अनेक प्रकार के दूषित विज्ञापन पतनोन्मुख समाज का खाका हमारे सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

सिनेमा विनाश या मनोरंजन

सभ्यता के आवरण में जिस मनोरंजन ने सबसे अधिक कामुकता, अनैतिकता, व्यभिचार की अभिवृद्धि की है, वह है सिनेमा तथा हमारे गंदे विकारों को उत्तेजित करने वाली फिल्म, उनकी अर्द्धनग्न तसवीरें और गंदे गाने। अमेरिकन फिल्मों के अनुकरण पर हमारे यहाँ ऐसे चित्रों की सृष्टि वृहत् संख्या में हो रही है, जिनमें चुंबन, आलिंगन आदि कुचेष्टाओं एवं उत्तेजक गीतों, प्रेम संबंधी वार्तालापों की भरमार है। रेडियों द्वारा गंदे संगीत से कामुकता का प्रचार हम सहन कर लेते हैं और घर-घर में बच्चे-बूढ़े, युवक-युवतियाँ गंदे गीत माता-पिताओं के सामने सुनते रहते हैं। फिल्मी संगीत इतने निम्न स्तर का होता है कि उसके उद्धरण देना भी महा पाप है। जहाँ बालकों को रामायण, गीता, तुलसी, सूर, कबीर, नानक के सुरुचिपूर्ण भजन याद होने चाहिए। वहाँ हमें यह देखकर नतमस्तक होना पड़ जाना पड़ता है कि अबोध बालक फरमाइशी रिकार्डों के, वेश्याओं के गंदे अश्लील गाने स्वच्छंदतापूर्वक गाते फिरते हैं। न कोई उन्हें रोकता है, न उन्हें मना करता है। ज्यों-ज्यों यौवन की उत्ताल तरंगें उनके हृदय में उठती हैं। इन गीतों तथा फिल्मों के गंदे स्थलों की कुत्सित कल्पनाएँ उन्हें अनावश्यक रूप से उत्तेजित कर देती हैं। वे व्यभिचार की ओर प्रवृत्त होते हैं। समाज में व्यभिचार फैलाते हैं, गंदे अनैतिक प्रेम संबंध स्थापित करते हैं, गलियों में लगे हुए चित्र, लिखी हुई अश्लील गालियाँ, कुत्सित प्रदर्शन, स्त्रियों को कामुकता की दृष्टि से देखना प्रत्यक्ष विषतुल्य है। उगती पीढ़ी के लिए यह कामांधता खतरनाक है। बचपन के गंदे दूषित संस्कार हमारे राष्ट्र को कामुक और चरित्रहीन बना देंगे।

सिनेमा से लोगों ने चोरी की नई-नई कलाएँ सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा। सिनेमा के कारण हमारे युवक-युवतियों में किस प्रकार स्वेच्छाचार बढ़ रहा है। इसके कई

सच्चे उदाहरण तो हमारे सामने हैं। पता नहीं लाखों-करोड़ों कितने तरुण-तरुणियों पर इसका जहरीला असर हुआ है। फिर भी हम इसे मनोरंजन मानते हैं। समाज के इस पाप को दूर करना चाहिए, अन्यथा अनैतिकता, व्यभिचार स्वच्छंदता, तमाम सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर देंगी। सिनेमा ने समाज में खुले आम अश्लीलता, गंदगी, कुचेष्टाओं, व्यभिचार, घृणित यौन संबंध, शराबखोरी, फैशनपरस्ती, कुविचारों की वृद्धि की है। यदि गंदे फिल्म ऐसे ही चलते रहे तो राष्ट्रीय चरित्र का और भी खोखलापन, कमजोरी और ढीलापन अवश्यमंभावी है। यदि हमारे युवक-युवतियाँ अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के पहनावे, श्रृंगार, मेकअप, फैशन, पैंट, बुशशर्ट, साड़ियों का अंधानुकरण करते रहे तो असंयमित वासना के द्वार खुले रहेंगे। गंदे फिल्म निरंतर हमारे युवकों को मानसिक व्यभिचार की ओर खींच रहे हैं। उनका मन निरंतर अभिनेत्रियों के रूप, सौंदर्य, फैशन और नाज-नखरों में भँवरे की तरह अटका रहता है। इन गंदी कल्पनाओं को समीप के स्थानों में प्रेमिका खोजकर कुचेष्टाओं से चरितार्थ करते हैं। अश्लीलता के इस प्रचार पर सरकार द्वारा कड़ा नियंत्रण लगना चाहिए।

अश्लील उत्तेजक विचार

आखिर शहर में रोग क्यों न बढ़ें? इस प्रश्न का विश्लेषण करते हुए आचार्य विनोबा भावे लिखते हैं, "शहर के लोग ठीक व्यायाम नहीं करते, घरों में बैठे रहते हैं। उनको अच्छी हवा नहीं मिलती। अधिक कपड़े पहिनते हैं जिससे सूर्य की किरणों से वंचित रहते हैं। घर भी ऐसा बनाते हैं जिसमें प्रकृति से दूर रहना पड़ता है, काम भी ऐसा जिसमें कुदरत से कोई प्रयोजन नहीं। फिर रात को जागेंगे, सिनेमा देखेंगे, खराब किताबें पढ़ेंगे। इस प्रकार अपने शरीर और मन को विकृत करते रहते हैं तो रोग बढ़ेगा ही।"

अश्लील और गंदा विषय-भोग संबंधी साहित्य वैसा ही घातक है, जैसा भले चंगे व्यक्ति के लिए विष। नई उमर में जब मनुष्य को जीवन और जगत का अनुभव नहीं होता, वह अश्लीलता की ओर प्रवृत्त रहता है। यौवन के उन्माद की आँधी में गंदा साहित्य सोई हुई काम-वृत्तियों को कच्ची आयु में उद्दीप्त कर देता है। आज जिधर देखो उधर उत्तेजक चित्र, वासना संबंधी हलके प्रेम की कहानियाँ, अश्लील उपन्यास, विज्ञापन इत्यादि छप रहे हैं। सिनेमा ने तो गजब का अंधेर मचा रखा है।

आज की फिल्में हलके रोमांस से परिपूर्ण प्रेम कहानियों को लेकर निर्मित होते हैं। अनुभवहीन, यौवन की मस्ती में पागल चढ़ती उम्र के नवयुवक इसी मिथ्या जगत को सत्य मानकर स्त्रियों को आकर्षित करने की कुचेष्टा करते हैं। इससे समाज का नैतिक स्तर गिर जाता है और व्यवस्था टूट जाती है। यदि समाज में गंदे साहित्य पर रोक न की जायगी तो निश्चय ही चारों ओर स्वच्छंदता और विकार का साम्राज्य फैल जाएगा, स्त्री-पुरुष तेजहीन, लंपट और कमजोर हो जाएँगे तथा उनसे ऊँचे पारमार्थिक कार्य न हो सकेंगे।

गंदा साहित्य नीति, धर्म का शत्रु है। यह पशुत्व की अभिवृद्धि करता है। समाज में इससे आध्यात्मिकता का लेश भी न रहने पाएगा। आवश्यकता इस बात की है कि जनता को इस गंदे साहित्य की दुष्टताओं, रोमांस की गंदी करतूतों, मानसिक व्यभिचार की त्रुटियों के प्रति सावधान कर दिया जाए।

विचार एक प्रचंड शक्ति है। मन में जब कोई गंदा अनर्थकारी विचार प्रविष्ट हो जाता है तो वासना उद्दीप्त हो जाती है। मन गंदगी, अश्लीलता, वासना की ओर नियंत्रण कम होते ही दौड़ जाता है। जो व्यक्ति एक बार कोई प्रेम संबंधित फिल्म, उत्तेजक दृश्य या नग्न चित्र को देख लेता है, उसकी स्मृति पर उसका एक छोटा सा स्मृति चित्र अंकित हो जाता है। यह गुप्त मन में बना रहता है और रात्रि में स्वप्नों के रूप में स्मृतिपटल पर आकर व्यक्ति को बड़ा परेशान और उद्विग्न करता है, बढ़ती हुई वासना, अदृश्य इच्छाओं, विषयी वायुमंडल की सृष्टि करता है। ऐसे माता-पिता के संसर्ग अथवा इस तरह के वातावरण में विकसित होने वाले बच्चे शीघ्र ही विषयी हो जाते हैं।

माता-पिता-शिक्षक इत्यादि का पुनीत कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चे को स्वस्थ, सात्विक, आध्यात्मिक शक्ति, बल, पौरुष, सद्गुणों को विकसित करने वाला साहित्य पढ़ने के लिए दें। यह ध्यान रखें कि लुक-छिपकर बच्चे बाजार में बिकने वाली सस्ती गंदे किस्से-कहानियों की पुस्तकें न खरीदें। फिल्मों से संबंधित गंदी पत्र-पत्रिकाएँ फिल्मी अभिनेत्रियों के अर्द्धनग्न चित्र न लिए फिरें, सिनेमा के गंदे गाने न गाते फिरें।

यदि आप स्वयं युवक हैं तो मन पर कड़ा नियंत्रण रखे, अन्यथा पतन की कोई मर्यादा नहीं है। वासना की ओर लुब्ध नेत्रों से देखने वाला किसी न किसी दिन

व्यभिचारी बनेगा और मान-प्रतिष्ठा का क्षय होगा। अपने आप को ऐसी पुस्तकों के वातावरण में रखिए जिससे आपकी सर्वोच्च शक्तियों के विकास में सहायता प्राप्त हो, श्रम संकल्प दृढ़ हो, व्यायाम, दीर्घायु, पौरुष, कीर्ति, भजन-पूजन, आध्यात्मिक या सांसारिक उन्नति होती रहे।

खाली मन शैतान की दुकान है। मन में कोई विषय ऐसा चाहिए जिस पर वह चिंतन, मनन, विचार इत्यादि शक्तियाँ एकाग्र कर सके। उसे चिंतन के लिए आपको कोई न कोई श्रेष्ठ या निंद्य विषय देना होगा। उत्तम यह है कि आप उसे विचारने के लिए शुभ, सात्विक, उच्चकोटि के विषय दें। उत्तम बातें सोचें। देश में फैले हुए नाना विषयों को सोचें तथा उन पर निज सम्मति प्रकट करें। गंदे साहित्य से बचने का श्रेष्ठ उपाय उच्चकोटि के साहित्य में संलग्न रहना है। शुभ चिंतन, सत्संग, सद्ग्रंथावलोकन में व्यस्त रहने से हम इर्द-गिर्द के अश्लील साहित्य से बच सकते हैं।

यह विषय इतना गंदा है कि इसकी चर्चा मात्र से हृदय काँप उठता है। इसके फल से समाज में व्यभिचार के गुप्त एवं प्रत्यक्ष पाप की कहानी हृदय दहला देने वाली है। व्यभिचार के साधन आज जितने सस्ते हैं, पहले कभी नहीं रहे। बड़े-बड़े शहरों में व्यभिचार के अड्डे पनप रहे हैं, जहाँ देश के नवयुवक यौवन, तेज, स्वास्थ्य और पौरुष को नष्ट कर रहे हैं। समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं जो व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं या स्वयं एजेंट का निंद्य कार्य करते रहते हैं। व्यभिचार मनुष्य के द्वारा किया हुआ सबसे घिनौना पाप कर्म है, जिसकी सजा हमें इसी जन्म में मिल जाती है।

दुराचार से होने वाले रोगों की संख्या अधिक है। वीर्यपात से गरमी, सुजाक तथा मूत्र नलिका संबंधी अनेक घृणित रोग उत्पन्न होते हैं, जिनकी पीड़ा नरकतुल्य है। इनके अतिरिक्त वेश्यागमन से शरीर अशक्त होकर उसमें सिरदरद, बदहजमी, रीढ़ की बीमारी, मिरगी, कमजोर आँखें, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना, पसलियों का दरद, बहुमूत्र, पक्षाघात, वीर्यपात, शीघ्रपतन, प्रमेह, नपुंसकता, क्षय, पागलपन इत्यादि महाभयंकर व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। जीवनीशक्ति क्रमशः क्षय होती रहती है। व्यभिचारी का समाज में सर्वत्र तिरस्कार होता है, उसका उच्च व्यक्तियों में जाना-निकलना आदि बंद हो जाता है।

इस प्रकार के जघन्य आचरण के क्या कारण हैं। उत्तर में कहा जा सकता है कि हमारी सदोश विवाह पद्धति, स्त्रियों का वास्तविक गौरव न जानना, पौरुष की मिथ्या कल्पना, परदा, गरीबी, अंध-धार्मिकता, हमारी जड़वादिता, संकुचितता, कामोत्तेजना तथा अनिष्टकर वातावरण व्यभिचार की वृद्धि में सहायक हो रहा है। भक्ति के नाम पर मठ-मंदिरों में भलीभाँति स्त्रियों पर पापाचार किया जाता है। जो लोग विवाहित हैं, वे पत्नी से अतिसहवास में लिप्त होकर कामुक और भ्रष्ट बनकर निस्तेज वीर्यहीन वन रहे हैं। व्यभिचारी पुरुष का दांपत्य जीवन कपट, धूर्तता, मायाचार और छल से परिपूर्ण होता है। वह अवसर पड़ने पर अपनी पत्नी तक को धोखा देता है।

इस प्रकार कुकर्म प्रायः चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है बाहर के स्त्री-पुरुषों से यौन संबंध स्थापित करने के पाप-प्रपंच उसके मन में उठा करते हैं। यह पाप-वृत्तियाँ कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मन में गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं। फिर उसके स्वभाव में यौन संबंधी बातों में दिलचस्पी, गंदे शब्दों का प्रयोग, बात-बात में गाली देना, गुह्य अंगों का पुनः-पुनः स्पर्श, पराई स्त्रियों को वासनात्मक कुदृष्टि से देखना, मन में गंदे विचारों व पापमयी कल्पनाओं के कारण खींचतान, अस्थिरता, आकर्षण-विकर्षण निरंतर चला करते हैं। यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति प्रायः चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं। अपने व्यापार तथा व्यवहार में अपनी इन कुप्रवृत्तियों का परिचय देते रहते हैं। लोगों के मन में उनके लिए विश्वास, प्रतिष्ठा, आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग नहीं मिलता और फलस्वरूप जीवन-विकास के महत्त्वपूर्ण मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

व्यभिचार की पापपूर्ण वृत्तियों के मन में जम जाने से अंतःकरण कलुषित हो जाता है। मनुष्य की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता स्वयं अपनी ही नजरों में कम हो जाती हैं तथा प्रत्येक क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग की भावना का अभाव मिलता है। यह सब बातें नरक की दारुण यातना के समान कष्टकर हैं। व्यभिचारी को निज कुकर्म का दुष्परिणाम इसी जीवन में उपर्युक्त प्रकारों से नित्य ही भुगतना पड़ता है।

ऐसे नीच प्रवृत्ति के पुरुषों के संपर्क से उनके अनेक प्रकार के रोग और दोष स्त्री की निर्बल अंतःचेतना को विकृत कर देते हैं। व्यभिचारी पुरुष की लंपटता,

वासना, घृणा, ईर्ष्या, उत्तेजना तथा स्त्री के नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव परस्पर टकराते हैं, जिससे उसकी मनोभूमि विकृत हो जाती है।

दुराचारिणी स्त्रियों का स्वभाव भी दूषित हो जाता है। उनमें चिड़चिड़ापन, झुँझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, काम, लोलुपता, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा में अभिवृद्धि हो जाती है। उनके शरीर में सिरदरद, कब्ज, पीठ में दरद, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गंधि आदि विकार बढ़ने लगते हैं। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का सान्निध्य अनिष्टकर होता है। पाठको! व्यभिचार की ओर आकर्षित मत होना। यह जितना ही लुभावना है, उतना ही दुःखदायी है। अग्नि की तरह यह सुनहरा-सुनहरा चमकता है, पर जरा सी भूल से यह विनाश करने वाला है। तनिक सा इसकी लपेट में आने पर यह विनाश करने वाला है। इस सर्वनाश के मार्ग पर मत चलना, क्योंकि इसकी ओर जिसने भी कदम बढ़ाया है, उसे भारी रोग, क्षति और विपत्ति का सामना करते हुए हाथ मल-मलकर पछताना पड़ा है। व्यभिचार सबसे बड़ा विश्वासघात है। क्योंकि किसी स्त्री के समीप तुम तभी पहुँच पाते हो, जब उसके घर वाले तुम्हारा विश्वास करते हैं। ऐसा कौन है, जो किसी अपरिचित के गृह में निधड़क पदार्पण कर सके और उससे मनचाही बातचीत करे। अतः पाप से डरो और संसार तथा अपनी लोक-लाज-मर्यादा का ध्यान रखो। क्या व्यभिचार से उत्पन्न होने वाले पाप, घृणा, बदनामी, कलंक, रोगों से तुम्हें तनिक भी भय नहीं?

सद्‌गृहस्थ वह है जो पड़ोसी की स्त्री के रूप में अपनी पुत्री या माता की छाया देखता है। वीर वह है जो पराई स्त्री को पाप की दृष्टि से नहीं देखता। स्वर्ग के वैभव का अधिकारी वह है, जो स्त्रियों को माता, बहन और पुत्री समझता हुआ उनके चरणों में प्रणाम करता है। व्यभिचार जैसे घृणित पाप से सावधान! सावधान!!

अभक्ष्य पदार्थों का सेवन

मांस विष तो नहीं है, किंतु इससे भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं, जो शरीर और स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। अधिक मांस खाने वालों को बदहजमी, पेट का भारीपन, कब्ज इत्यादि की शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं। वैसे भी मांस उत्तेजक पदार्थ है और जब उसकी आदत पड़ जाती है तो उसके बिना शरीर में भारीपन और

आलस्य रहता है तथा किसी काम में मन नहीं लगता। अनेक बार रोगी पशुओं का मांस खाने में आ जाता है, जिससे मनुष्य को भी वे रोग पैदा हो जाते हैं।

कितने ही व्यक्ति मांस भक्षण को मोटे-ताजे स्वस्थ रहने का उपाय बताकर विवाद करते हैं। ऐसे मांसाहारी उन त्रुटियों को नहीं जानते जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। संसार में बड़े-बड़े बलशालियों का भोजन दूध, शाक, अनाज, तरकारियाँ, मेवे इत्यादि रहे हैं।

उदाहरण के निमित्त संसार प्रसिद्ध-विचारक, नाटककार, जार्ज बर्नाड शॉ को ही देखिए। शॉ के डॉक्टरों ने कहा था कि मांस बिना तुम मर जाओगे। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक उत्तर दिया—"अच्छा! हमें केवल प्रयोग करके ही देखना चाहिए। यदि मैं जीवित रहा तो आशा करता हूँ कि आप भी निरामिषभोजी हो जाएँगे।" शॉ दीर्घकाल तक शाक-तरकारियों और फलों पर जीवित रहे। मुनि तथा योगीजन सदा मांस से दूर रहे और दीर्घकाल तक स्वास्थ्य का आनंद लेते रहे। फिर हम क्यों मांस खाएँ?

अंडे खाना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं

आजकल देशी-विदेशी सज्जन शक्ति के लिए अंडे खाने की सलाह दिया करते हैं। उनकी राय में अंडे के समान पोषण करने वाले अन्य कोई पदार्थ नहीं है। कुछ महानुभाव अंडे खाने में जीव हत्या नहीं समझते, फल से उसकी तुलना किया करते हैं। वास्तव में अंडा हितकारी नहीं है, इस संबंध में कुछ विलायती डाक्टरों ने कहा है कि मुर्गी के मांस और अंडे में एक प्रकार की विषैली एल्व्यूमिन पाई जाती है, जो जिगर और अंतड़ियों को खराब करती है और बहुत ही हानिकारक है। अंडे में जरदी होती है, उसमें नमक, चूना, लोहा और विटामिन सभी पदार्थ रहते हैं। यह पदार्थ बच्चों के पोषण के लिए भगवान ने भर दिए हैं। बहुत से लोगों ने यह समझ लिया है कि यह चीजें दूध की तरह खाने की हैं किंतु यह उनकी भूल है।

अंडे में जो प्रोटीन होता है, वह दूध के प्रोटीन से कम दर्जे का है, क्योंकि उसके पाचन में बड़ी कठिनाईयाँ आ पड़ती हैं। अधिकतर तो वह सड़कर खाने के योग्य न रहकर हानिकारक भी हो जाती हैं। दूध तो रखा रहने पर जम जाता है और खट्टा भी हो जाता है, परंतु अंडा खाने में खराब मालूम होता है और हानिकारक

हो जाता है। इसके विपरीत खट्टा या जमाया हुआ दूध अधिकांश लोगों को ताजे दूध की अपेक्षा अधिक रुचिकर और सुपाच्य हो जाता है। दूध का यह गुण मिठास के कारण है, जो अंडे में होता ही नहीं। सात्विक भोजन के साथ आधा सेर दूध, अंडे और मांस के बिना ही प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पहुँचा देता है।

योरोपीय देशों में मक्खन निकालने के पश्चात मक्खनियाँ दूध प्राय: जानवरों को खिलाया या फैंक दिया जाता है। यदि यही दूध मनुष्य के खाने के काम में लिया जाय तो इस देश के लिए मांस से अधिक लाभदायक होगा। नौ औंस (साढ़े चार छटाँक) मक्खनियाँ दूध शरीर में इतना चूना तथा हड्डियाँ बनाने वाली सामग्री उत्पन्न कर देता है जितना एक दर्जन अंडे नहीं कर पाते।

अंडे के खाने से पाचन तंत्र में सड़न उत्पन्न हो जाती है। इस सड़न से एक प्रकार के नशे सी स्थिति पैदा होती है। इससे जी मिचलाता है, सरदरद, मुँह में दुर्गंधि आना तथा दूसरी ऐसी अन्य बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसके विपरीत दूध, बादाम, मूँगफली, आदि में अंडे से अधिक प्रोटीन होता है। जितना दूध, बादाम आदि के प्रोटीन खाने पर आमाशय में पाचक रस बनता है, उतना ही अंडे के प्रोटीन से नहीं बनता। अंडे की कच्ची सफेदी पर पाचक रसों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और दूसरे भोजनों के पचने में भी रुकावट उत्पन्न होती है।

वेटल क्रीक सिनेटोरियम के सुपरिन्टेन्डेन्ट जान हरवे लाग साहब लिखते हैं कि—"मांसाहारियों के सब बहाने सब प्रकार से एक-एक करके सभी लोप होते जा रहे हैं। यथार्थ में वर्तमान समय में उनका किसी प्रकार का कोई भी बहाना किसी भी दशा में स्वीकार करने के योग्य नहीं है जबकि अच्छे पौष्टिक और सात्विक पदार्थ खाने को मिल रहे हैं।"

भोजन स्वाद के लिए या पेट भरने के लिए ही नहीं है, वरन उसका उद्देश्य शरीर को ऐसे पोषक पदार्थ देना है जो निरोगता, स्फूर्ति एवं दीर्घजीवन प्रदान करते हुए मन-बुद्धि को भी स्वस्थ दिशा में विकसित करे। हर पदार्थ में स्थूल गुणों के साथ-साथ एक सूक्ष्म गुण भी होता है। खाद्य पदार्थों के जो स्थूल गुण है, उनका भला-बुरा प्रभाव शरीर पर पड़ेगा और उसके जो सूक्ष्म गुण होगें, उनका प्रभाव मन-बुद्धि पर पड़ेगा। इसी कुप्रभाव को ध्यान में रखकर ऋषियों ने भक्ष्य-अभक्ष्य का निर्णय किया था।

नशे मन और बुद्धि का नाश करने वाले हैं। शरीर पर उनका कोई छोटा-मोटा लाभ भी होता हो तो भी उनके द्वारा मानसिक हानि अत्यधिक होने के कारण उन्हें त्याज्य ठहराया गया है। कहा जाता है कि तंबाकू भोजन पचाती है, चाय फुरती लाती है। शराब थकान मिटाती है, अफीम स्तंभन करती है, भाँग मस्ती लाती है। यदि यह बातें आंशिक रूप से ठीक भी हों तो भी उनके विषैलेपन के कारण जो क्षति होती है, उसकी तुलना में यह लाभ अत्यंत ही तुच्छ है। इसके अतिरिक्त इन नशीली चीजों का मानसिक क्षेत्र पर जो भारी कुप्रभाव पड़ता है, उसकी हानि तो मनुष्य जीवन के उद्देश्य को ही नष्ट कर देने वाली है।

हमको यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि मनुष्य का हित सात्विक पदार्थों के सेवन में ही है। मांस, मदिरा, गाँजा, भाँग, चाय, तंबाकू आदि सभी पदार्थ तामसी होते हैं और उसके सेवन से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर विपरीत कार्यों की रुचि उत्पन्न करती है। इनके द्वारा मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से निर्बल होता है और उसका आत्मिक पतन होता है। इसलिए किसी भी कल्याणकामी व्यक्ति को इन निकृष्ट पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

गायत्री महाविद्या घर-घर पहुँचाएँ

गायत्री महामंत्र के अक्षरों में बीज रूप से मानवी संस्कृति एवं आदर्शवादिता के सारे सिद्धांत सन्निहित हैं। इसे विश्व का सबसे छोटा मात्र चौबीस अक्षरों का वह ग्रंथ कह सकते हैं, जिसमें धर्म और अध्यात्म का समूचा तत्वज्ञान सार रूप में समाविष्ट मिल सकता है। इन अक्षरों की व्याख्या में वह सब कुछ है जो मानवी प्रगति एवं सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है [illegible], विवेकशीलता का [illegible] है। गायत्री महाविद्या [illegible] प्रत्येक अक्षर की व्याख्या एवं [illegible] हर साधक को [illegible] चाहिए।

[illegible] दिनों सारे समाज, [illegible] में अनीति, बेईमानी, चरित्रहीनता, तृष्णा, लिप्सा और कुसंस्कारों का जो विष समा गया है, उसे धोने के लिए यज्ञ और गायत्री के व्यापक विस्तार की क्रांति खड़ी करनी पड़ेगी। इस युग की जाग्रत आत्माओं को अपना कर्तव्य समझकर इसे पूरा करना है।

क्या करें ? कैसे करें ? : (१) जाग्रत आत्माएँ न्यूनतम १००-१०० मंत्रलेखन पुस्तकें मँगाकर अपने-अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में मंत्रलेखन की प्रेरणा देकर साधक बनाने का प्रयास करें। व्यस्त साधक अपने १० इष्ट-मित्र-सहयोगियों को १०-१० मंत्रलेखन पुस्तकें देकर १०० साधक भी बना सकते हैं।

(२) प्रत्येक गायत्री साधक को अपने घर पर देवस्थापना हेतु पंचदेव का चित्र स्थापित करना चाहिए। इस देव मंदिर के साथ-साथ गायत्री ज्ञान मंदिर स्थापित करने के लिए गायत्री महाविद्या सेट (३२ पुस्तकें ब्रह्मभोज मूल्य ७० रु०) प्रतिदिन एक रुपया अंशदान से एकत्रित राशि से स्थानीय युग साहित्य केंद्र अथवा युग निर्माण योजना, मथुरा से प्राप्त करना चाहिए।

(३) प्राणवान कार्यकर्त्ता स्तर के साधकों को १०० मंत्रलेखन पुस्तिकाओं के १००), न्यूनतम १० गायत्री महाविद्या सेटों के ७०० रु० तथा डाक खरच १६५ रु० कुल ९६५ रु० भेजकर मँगा लेने चाहिए तथा ७०) प्रति सेट गायत्री साधकों के घरों पर ज्ञान मंदिर के रूप में स्थापित कराना चाहिए। डाक खरच कार्यकर्त्ताओं को स्वयं गायत्री विद्या के प्रचार हेतु चलाए जा रहे आंदोलन में लगाना चाहिए।

(४) दानवीर भामाशाहों के सहयोग से गायत्री तपोभूमि से गायत्री महाविद्या के प्रचार हेतु इस आंदोलन में इस साहित्य को आधे मूल्य में उपलब्ध कराया जा रहा है। धनीमानी दानवीरों से अनुरोध है कि इस पुण्य-कार्य में अनुदान भेजकर अपने धन का सदुपयोग करें, पुण्य के भागीदार बनें, माता की कृपा प्राप्त करें।

मिशन की पत्रिकाएँ

(१) अखण्ड ज्योति (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-108.00, आजीवन शुल्क-2000.00 रुपया।

अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-78.00 रुपया

पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-281003

फोन : (0565) 2403940

(२) युग निर्माण योजना (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-54.00, आजीवन शुल्क-1000.00 रुपया।

युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-85.00, आजीवन शुल्क-1800.00 रुपया।

पता : युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-3

फोन : (0565) 2530128, 2530399

फैक्स : (0565) 2530200

(३) प्रज्ञा अभियान (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-30.00 रुपया।

पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की दृश्य-श्रव्य जानकारी

वार्षिक शुल्क-1500.00 रुपया।

पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखंड) फोन : 01334-260602

GP 19

4/-